आयो कहाँ से मंकीमैन

आदित्य निगम

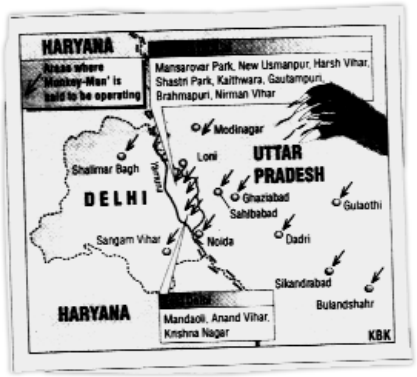

सन् 2001 के अप्रैल-मई में पूर्वी दिल्ली के बाहरी इलाक़ों को एक अजीब-से डर ने जकड़ लिया। चारों तरफ़ यह ख़बर फैल गई कि एक भयानक जीव निम्नवर्गीय इलाक़ों में चुपके से हमला करता है। दरअसल किसी ने इसे देखा नहीं था — इतना भी नहीं कि इसके बारे में कुछ ठोस बता सके, हालाँकि कुछ लोग इसकी मार से घायल होने का दावा कर रहे थे। बस, अलग-अलग लोग इसे अलग-अलग ढंग से बयान कर रहे थे। लोकभाषा में इस 'नरवानर' को 'काला बंदर' या 'मंकीमैन' कहा गया।

तक़रीबन डेढ़ महीनों के अंदर ही इसके इर्द-गिर्द एक शहरी किंवदंती बन गई, और इसके कारनामों की मुख़्तलिफ़ क़िस्सागोइयों में तरह-तरह की तब्दीलियाँ देखी गईं। इस जन्तु को कभी आधा बानर या आधा मानुस कहा गया तो कभी इसे 'अनोखा जीव जो मशीन की तरह प्रकाशमान है' कहा गया तथा कभी इसे 'नक़ाबपोश' कहा गया। एक अख़बार के अनुसार, हालाँकि पहली शिकायतें ग़ाज़ियाबाद के विजय नगर थाने में दर्ज की गईं मगर इनमें किसी (मुखौटे वाले आदमी) का ज़िक्र नहीं था। एक को छोड़कर लगभग सारी शिकायतों में एक निशाचर बंदर के हमले की बात लिखायी गई, जो घर के छज्जों पर सोये लोगों पर होते थे। ऐसी शिकायत, जिससे कुछ ख़ास ज़ाहिर होता हो, पहले-पहल 30 अप्रैल को दर्ज कराई गयी, जिसमें अनिल उर्फ़ कपिल ने ये दावा किया कि उसके पेट पर जिस काले साये जैसे जीव ने वार किया वो बंदरनुमा था। रिपोर्ट में कहा गया कि उसके घाव उसकी कहानी से मेल खाते हैं।

हालाँकि पुलिस ने दावा किया कि अनिल ने अपने भाई से हिंसक मारपीट करके शांति भंग की थी और गिरफ़्तारी से बचने के लिए उसने ग़लत बयान दिया था। पुलिस को गुमराह करने के लिए उसने मंकीमैन की कहानी गढ़ डाली। रिपोर्ट के मुताबिक़ इस बात का पता बाद में चला। तब तक मंकीमैन की अफ़वाह चल निकली थी। ख़बर के अनुसार, "जब कहानी अख़बार में छपी तो लोग ख़ासे बेचैन हो गए, हालाँकि हमले के शिकार लोगों ने, जैसे ग़ाज़ियाबाद की गुड्डी के पिता ने, हमलावर की 'पक्की पहचान' कर ली थी कि वह बंदर ही था, और उसके बाल काले थे"।

जैसे-जैसे कहानियाँ फैलीं इनमें नई बातें जुड़ती गईं तथा मंकीमैन लोक-कल्पना में एक शक्ल अख़्तियार करने लगा। हिन्दी अख़बार *अमर उजाला* की रिपोर्ट के अनुसार 2 मई को लोग विजय नगर के एक खुले मैदान में जमा हो गए, जब किसी ने एक बंदर जैसी छाया को देखने का दावा किया। धीरे-धीरे इस जीव का आतंक भी बनता गया। इतना कि 10 मई को ज़िला प्रशासन ने देखते ही गोली मारने के आदेश दिए, ताकि स्थिति नियंत्रित हो सके।

13 मई के बाद से मंकीमैन ने ग़ाज़ियाबाद की सीमा से लगे दिल्ली के पूर्वी हिस्सों में अपने कारनामे शुरू कर दिए। इस समय तक इसकी तब्दीली एक 'सायबॉर्ग' के रूप में हो चुकी थी। अप्राकृतिक शक्तियों से युक्त एक कम्प्यूटरीकृत छवि के रूप में। यह दावा किया गया कि इसकी आँखें हरी थीं तथा इसके पाँवों में स्प्रिंगबोर्ड लगे थे तथा विचरण के लिए बटनों से युक्त एक हरी बेल्ट भी थी। हालाँकि कुछ दीगर रिपोर्टों में कहा गया कि मंकीमैन द्वारा इनमें से कुछ लक्षण दिल्ली पहुँचने तक अपना लिए गए थे। ग़ाज़ियाबाद के पुलिस अधीक्षक श्री आर.के. चतुर्वेदी ने *हिन्दू* के रिपोर्टर को बतलाया कि शुरू के बयान अधिकांशतः विजय नगर, राज नगर और संजय नगर से आए, जहाँ बंदरों की आबादी भी थी तथा लोगों ने कटे हुए होठों वाले एक काले बंदर के हमले की बात की, लेकिन इन बयानों में तुरंत बदलाव आया और लोगों ने किसी मुखौटेवाली छवि की बात करनी शुरू की। चतुर्वेदी के अनुसार बहुत जल्दी लोगों ने ये बताना शुरू किया कि कैसे यह ऊँची इमारतों से कूद सकता था और अत्यंत तेज़ गति से दौड़ सकता था, जबकि कोई इसका चश्मदीद गवाह नहीं था।

मंकीमैन में ये लक्षण बेशक किसी भी मुक़ाम पर जुड़े हों, इसमें कोई शक नहीं रहा कि जिस समय तक इसका भय दिल्ली में व्याप्त हुआ, यह बहरूपिया सायबॉर्ग वजूद में आ चुका था। बातचीत के दौरान कुछ लोगों ने तो निगमन तर्कशास्त्र का सहारा लेकर निष्कर्ष दिया कि इस मंकीमैन के पास एक पेचीदा कम्प्यूटरीकृत तंत्र था जिसके सहारे यह विचरण करता था। एक घटना के आधार पर उन्होंने यह दावा किया कि मंकीमैन ने जब एक घर पर हमला किया तो वहाँ एक पानी का घड़ा फूट गया और मंकीमैन को वहाँ से भागना पड़ा। उनका दावा था कि पानी उसके इलेक्ट्रॉनिक सिस्टम को नष्ट कर सकता था, इसीलिए वह वहाँ से भाग गया। एक अन्य तरीक़े से भी इसकी व्याख्या की गईः आजकल हर अजीबो-ग़रीब चीज़ की व्याख्या के लिए 'पाकिस्तानी दुश्मन' का क़िस्सा अनायास ही हरकत में आ जाता है। इस तरह मंकीमैन प्रसंग ने कुछ लोगों के दिमाग़ में अरसे से दबे भय को अभिव्यक्ति दी — उनके रुग्ण मानस को खुले में आने का मौक़ा प्रदान किया। ये सारी की सारी अभिव्यक्तियाँ मासूम रही हों, ऐसा नहीं है। उदाहरण के तौर पर शिवसेना का यह दावा करना कि इसके पीछे पाकिस्तानी ख़ुफ़िया एजेन्सी आई.एस.आई. का हाथ था जिसने 131 बंदरों को आतंक मचाने के लिए सीमा पार करवाया। आतंक इस क़दर था कि लोगों ने छतों पर सोना छोड़ दिया तथा मोहल्लों के नौजवानों द्वारा पुलिस के साथ मिलकर रात की पहरेदारी ज़्यादा चौकस कर दी गई। कुछ हिन्दुओं द्वारा हवन तथा यज्ञ भी किए गए ताकि शैतान का नाश हो सके।

निस्संदेह, इस मंकीमैन की दंतकथा ने जब जीवंत रूप ले लिया तो कई मुख़्तलिफ़, मासूम क़िस्म की घटनाएँ मंकीमैन के कारनामे की बड़ी कहानी में शामिल होने लगी। इसके क़द के बारे में जब बातें होतीं तो लगता कि या तो किसी ने इसे देखा नहीं होगा या उसे किसी दूसरे जानवरों के बदले में समझ लिया गया। नोएडा के एक आदमी का यह कहना था कि जब उसने उसे पकड़ने की कोशिश की तो वह ऐसी बिल्ली के रूप में परिणत हो गया जिसकी चमकदार आँखें थीं। मध्यवर्गीय मोहल्लों में मंकीमैन के दर्शन विरले हुए। ऐसे ही एक सम्पन्न मोहल्ले में किसी सज्जन को सुबह साढ़े पाँच बजे अपने छत की बालकनी से एक अनोखा नज़ारा दिखा, "एक आदमी काले बंदर के वेश में मारुति ज़ेन से उतरा और कार अचानक धड़धड़ाती हुई चली गई।" लोग चाहे किसी भी वजह से ज़ख़्मी हुए हों, वे अकसर उसका कारण मंकीमैन को बताते पाए गए।

हिन्दू से बात करते समय ग़ाज़ियाबाद के पुलिस अधीक्षक चतुर्वेदी ने कुछ कुशाग्र टिप्पणियाँ प्रस्तुत कीं। श्री चतुर्वेदी का दावा था कि कुछ चीज़ें उन बदलते विवरणों के दौरान भी अपरिवर्तित रहीं। "पहले सारी घटनाओं की रिपोर्टें सामान्यतया निम्नवर्गीय मुहल्लों तथा झुग्गियों से आई, जहाँ आबादी का घनत्व ज़्यादा था। सारी घटनाओं में बिजली गुल होने की बात थी तथा इसके एकाध घंटे के अंदर रात में ही हमले होने की बात होती थी। उन्होंने आगे कहा कि सारी घटनाएँ रिहायशी इलाक़ों में होती थी तथा कोई भी घटना किसी आदमी के साथ रात में अकेले सड़क पर चलते समय नहीं हुई।" मंकीमैन के कारनामों की ये अंतिम ख़ासियत दिल्ली में इसके अभियानों के दौरान बदली नहीं। ग़रीब, मुख्यतः मज़दूर बस्तियों में, जहाँ घर एक-दूसरे से सटे होते हैं, और जहाँ अंधेरा और बिजली गुल होने का लम्बा समय, लोग अपनी छतों पर गुज़ारते हैं — ये सारी चीज़ें मंकीमैन की कारस्तानियों का रंगमंच थी।

The monkeyman mystery deepens

ऐसा पहले भी हुआ है कि अचानक अफ़वाहों के कारण दिल्ली में हलचल मच गई हो तथा शहर में बेचैनी तथा उत्तेजना घर कर गई हो। हालिया घटनाओं में 1995 में गणेश की मूर्ति द्वारा दूध पीये जाने की बात सबसे प्रमुख है। हालाँकि इस अफ़वाह का प्रभाव शहर के लगभग सभी स्तरों में देखा गया तथा शहर के बाहर यहाँ तक कि विदेशों में रहने वाले हिन्दुओं तक भी यह बात पहुँची थी। इसके विपरीत, मंकीमैन ने अपना प्रभाव सबॉल्टर्न बस्तियों तक ही सीमित रखा।

सबॉल्टर्न अस्तित्व का 'स्पेस'

मंकीमैन की इस घटना में एक दिलचस्प और ख़ास बात रही कि इसकी गतिविधियों का एक निश्चित इलाक़ा था। यानी उसकी गतिविधियाँ निम्नवर्ग तथा निम्न मध्यमवर्गीय क्षेत्रों में ही सीमित रहीं। सबॉल्टर्न की कल्पना तथा अस्तित्व से इस घटना का नज़दीकी संबंध है। इन विवरणों में किन जगहों का नाम आया है? दिल्ली की सबॉल्टर्न ज़िन्दगी के बारे में ये हमें क्या बताते हैं? आम तौर पर श्रमिक वर्गों की घनी आबादी वाली बस्तियाँ पूर्वी दिल्ली में हैं। यही इलाक़े मंकीमैन के नाटक का रंगमंच रहे। ग़ाज़ियाबाद के पुलिस अधीक्षक बताते हैं कि किसी भी हालत में कोई घर लौटते समय रास्ते में इसके हमले का शिकार नहीं हुआ यानी मुख्य सड़कों पर और खुले स्थानों पर जो इन बस्तियों की तरफ़ जाते थे कोई ऐसी घटना नहीं हुई।

मंकीमैन वहाँ प्रकट हुआ जहाँ घर की छतों पर, घर के बाहर, अंधेरी गलियों में, गर्मी की रातों में लोग सोते थे, और जहाँ की गलियों से होकर मंकीमैन विलुप्त भी हो जाता था। हम आसपास के खुले हुए और छोटे-छोटे मैदानों के बारे में सुनते हैं, जो अर्द्धशहरी तथा अपेक्षाकृत अविकसित क्षेत्रों की पहचान होती है, वहाँ लोग जमा होकर मंकीमैन के हमलों की बातें करते थे। ऊँची इमारतों से इसके छलाँग लगाने की बात भी सुनी गई। इसका मतलब इस संदर्भ में दिल्ली के शहरी गाँवों की अनाधिकृत तथा पुनर्वास बस्तियों से है जो अकसर तीन या चार मंज़िला होती हैं। ये नज़ारे उपाश्रित शहरी अस्तित्व के एक हिस्से की झलक देते हैं। ये जगहें सम्पन्न बस्तियों से पूरी तरह अलग भी दिखती है। अगर कुछ सम्पन्न बस्तियाँ होती भी हैं तो वे लोहे के फाटकों व अन्य सामाजिक आचारों के ज़रिए आम अवाम के साथ एक ख़ास क़िस्म की दूरी बनाए रखती हैं। पिछले दो दशकों में शहरों में क्षेत्रीय पुनर्व्यवस्था के बाद यह अलगाव पूरा हो गया है। परिणामतः मध्यवर्गीय मोहल्ले से घटना की एकमात्र रिपोर्ट आती है जिसमें एक आदमी बालकनी से मुखौटा पहने किसी आदमी को देखता है। ग़ौरतलब है कि उसे यह आदमी एक सुरक्षित दूरी से देखता है।

इन बस्तियों के वर्षों के अपने तजुर्बे से मैंने यह पाया है कि यहाँ सबॉल्टर्न ज़िन्दगी आम तौर पर क़स्बाई जीवन के ढर्रे को नए सिरे से पैदा करती रहती है। इन इलाक़ों की आंतरिक संरचना कुछ ऐसी होती है कि हमें महानगरीय ज़िन्दगी के समय, उसकी गति से इसका अंतर साफ़ दिखता है। ये बस्तियाँ अपने बाशिंदों, ख़ासकर फ़ैक्टरी मज़दूरों को दिन भर के काम के बाद शहर की भागमभाग से एक क़िस्म की पनाह देती हैं। इन बस्तियों की भौगोलिक बुनावट व इनके ख़ास इतिहास इनकी रोज़ाना की ज़िन्दगी को सामुदायिक माहौल मुहैया कराते हैं, जो महानगरों के मध्यवर्ग व सम्पन्न तबक़ों की कटी हुई ज़िन्दगियों से काफ़ी अलग है। यहाँ संचार के स्थानीय नेटवर्क वस्तुतः निहायत सक्रिय व जीवंत होते हैं। चूँकि यहाँ सामाजिकता चाय और पान की दुकानों के इर्द-गिर्द बुनी जाती है। लोग गली-कूचों में खाटों पर बैठे-लेटे गप्प, अफ़वाहों, बतकही के ज़रिए सूचनाओं का आदान-प्रदान करते हैं। सम्पन्न हलक़ों से फ़र्क़ साफ़ है — जहाँ मोहल्ले के रिश्ते न के बराबर होते हैं और जहाँ बाज़ार जाना भी महज़ ज़रूरत प्रेरित है, और जहाँ ख़रीदारी के वक़्त भी न्यूनतम इंसानी सम्पर्क कर काम चल जाता है।

यह बता पाना वाक़ई बड़ा कठिन है कि मंकीमैन जैसी कोई चीज़ थी या कुछ लोगों ने ऐसी शरारत की। इस घटना में मंकीमैन का होना या न होना इतना दिलचस्प नहीं है जितना यह कि इससे हमें सबॉल्टर्न दिल्ली की रोज़ाना ज़िन्दगी की एक झलक मिलती है। मिसाल के तौर पर इस घटना के निम्नलिखित पाठ को देखें। छोटे शहरों की ज़िन्दगी को आधार बनाकर — जहाँ घरों की मिली हुई दूर तक जाती छतें, लोगों के सपाट जीवन में ऐसे रंगमंच के रूप में उभरती हैं जहाँ उनकी कामेच्छाएँ अभिव्यक्ति पाती हैं। सुधीश पचौरी ने भी इस घटना के यौन पहलू को रेखांकित किया। पचौरी इन छतों को अतृप्त कामना की अभिव्यक्ति का स्थान मानते हैं। छत —

बाम, अटरिया या छज्जा — ऐसी जगह है जहाँ चोरी-छुपे नज़रें मिलाई जाती हैं, फिर संदेशों का आदान-प्रदान होता है और विसाल-ए-यार के मुक़ाम तय किए जाते हैं। यानी कि बड़े एहतियात से पहरेदारी में सुरक्षित सेक्शुॲलिटी को छज्जों के निरंतर विस्तार में टूटने का ख़तरा पैदा हो जाता है। इसलिए बक़ौल पचौरी, सामाजिक मर्यादाओं का ऐसा अतिक्रमण अकसरहाँ गर्मी की अंधेरी रातों में होता है, जब गुपचुप ढंग से कोई भटककर अचानक 'ग़लती से' किसी और की छत पर पाया जाता है। पचौरी की राय में शुरुआती घटनाओं में एक कोण ज़रूर ऐसा था, जिसके बाद इस रहस्यमय जीव ने अपने शिकार — ख़ासकर महिलाओं — को हल्के से 'खरोंच' भर दिया। चाहे जो हो, यह तय है कि मंकीमैन के कारनामों को निम्नवर्गीय बस्तियों और स्थानीय भौगोलिक संरचनाओं से अलहदा करके नहीं देखा जा सकता। मंकीमैन मध्य या उच्चवर्गीय कल्पना को उस तरह नहीं गुदगुदा सका था जिस तरह गणेश द्वारा दूध पीने की आत्मतुष्ट कहानियों में हुआ था। गणेश मंदिरों में स्थापित थे और लोगों को उन्हें दूध पीते देखने के लिए वहाँ जाना पड़ता था। तब घटनास्थल मंदिर थे न कि अमीरों के कटे हुए घर, जहां सबॉल्टर्न अवाम के नेटवर्क सिरे से ग़ायब हों। गणेश परिघटना में संचार के जिन नेटवर्कों का सहारा लिया गया, वे थे एसटीडी और शुरुआती दौर के ई-मेल। इसके बरक्स मंकीमैन परिघटना में बस्तियों के अंदर और उनके बीच स्थित नेटवर्क का इस्तेमाल हुआ।

एक और 'स्पेस'

एक दूसरा क्षेत्र भी है जिसकी तरफ़ यह प्रकरण हमारा ध्यान दिलाता है। इस क्षेत्र की बात हम इस घटना पर दी गई बुद्धिवादी प्रतिक्रिया को देखकर शुरू कर सकते हैं। 'इंडियन रैशनलिस्ट एसोसिएशन' के मुख्य प्रवक्ता सनल इडामारुकू ने इस पूरी घटना को 'जनभ्रम' कहा। ऐसा ही विचार अन्य कई लोगो ने भी दिया। *हिन्दू* ने भी इस पर सम्पादकीय टिप्पणी की, जैसा कि अन्य अख़बारों ने किया। इस सम्पादकीय ने इस मुद्दे पर, एक तरीक़े से, बुद्धिवादी आम सहमति के साथ यह कहा कि "ऐसा हमारी याद में पहली बार नहीं हो रहा है" तथा आग्रहपूर्ण तरीक़े से यह भी कहा कि "दिल्ली के 'सिविल सोसायटी के स्वरूप' में दरार के संकेत मिल रहे हैं।" गणेश जी की दूध पीने वाली घटना को याद कर अफ़सोस जताते हुए कहा गया कि "यहाँ तक कि सम्पन्न लोग भी हाथों में दूध के पात्र लेकर जा रहे थे। ऐसा लगता था कि तर्क और विवेक को लोगों ने जैसे बेच खाया हो।"

जो भी हुआ उसकी तार्किक व्याख्या करते हुए सम्पादकीय ने यह भी जोड़ा कि "इन चीज़ों को रोकने के लिए अफ़वाह फैलानेवालों के साथ सख़्ती से निपटना चाहिए।" हालाँकि यह पर्याप्त नहीं होगा, इसीलिए यह भी आवश्यक है कि "लोगों को वैज्ञानिक मिज़ाज के बुनियादी उसूलों में दक्ष करने की ज़रूरत है ताकि वे तार्किक व्यवहार बरत सकें।" इसने निष्कर्षतः यह भी कहा कि "इस काम में सिविल सोसायटी संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होगी।" "एक जीवंत सिविल सोसायटी ही इस परिस्थिति के समाधान का रास्ता है।" *इंडियन एक्सप्रेस* के सम्पादक ने भी इस तेज़ी से फैलती अतार्किकता पर अपनी चिंता जतायी तथा इसे एक विश्वव्यापी परिघटना के रूप में देखा।

सिविल सोसायटी या यूँ कहें कि उसकी नैतिकता के अलम्बरदारों ने सरकारी संस्थाओं, ख़ास तौर पर पुलिस बल की इसलिए जमकर ख़बर ली क्योंकि वे भी उन अंधविश्वासी तत्वों के शिकार हो गए थे। उनसे अपील की गई कि अविवेक और अंधविश्वास के इस अश्वमेधी घोड़े को क़ाबू में करें। इसका असर भी हुआ। एक माह के अंदर ही दिल्ली पुलिस ने 200 पन्नों की एक रिपोर्ट तैयार की जिसमें इस 'वानर लीला' को मिथक बताते हुए इसकी भर्त्सना की गई।

हम पूछ सकते हैं कि इन बातों का 'स्पेस' से क्या नाता है? मेरा तर्क ये है कि यह टिप्पणी एक अलग स्पेस के बारे में है जिसे हम सामाजिक या संकल्पनात्मक स्पेस कह सकते हैं। जब हम आधुनिकता और इसके द्वारा लाए गए शहरी रूपांतरण की बात करने लगते हैं तो निश्चित रूप से एक ख़ास 'स्पेशियल' (या स्पेस संबंधी) कल्पना उभरती है जो सामाजिकता के हमारे सैद्धांतीकरण में सामने आती है। यह भले ही अमूर्त स्पेस है फिर भी ये वे ही हैं, जहाँ हम विभिन्न सामाजिक स्तरों को स्थापित करते हैं। यह टिप्पणी तीन अलग-अलग

'When I grabbed it, it turned into cat'

सामाजिक / संकल्पनात्मक ज़मीनों की पहचान कराती है। एक स्तर पर सिविल सोसायटी का हिस्सा है — वह धरातल जो तार्किकता और वैज्ञानिक सोच की भूमि है। हालाँकि सम्पादकीय टिप्पणी इसके तात्क्षणिक भंजन पर अपनी चिंता प्रकट करती है, पर सम्पादक आधुनिकता के उच्च धरातल पर ही अतार्किकता को दूर होना संभव बताता है। यह वह धरातल भी है, जैसा हम देख सकते हैं, जहाँ एकाकी, व्यक्तिपरक तथा अधिकारों से युक्त नागरिक रहता है। इस विवरण में दूसरा हिस्सा है, राज्य और उसकी संस्थाएँ। जैसे पुलिस, जो कभी-कभी वे भूमिकाएँ भी निभाती हैं जो उनको शोभा नहीं देतीं। हालाँकि यह टिप्पणी स्पष्ट नहीं करती मगर हम यह कह सकते हैं कि राज्य का ऐसा व्यवहार अपनाना इस बात का संकेत होता है कि यह तीसरे और सबसे समस्याजनक हिस्से से अलग नहीं है। यह तीसरी ज़मीन बेनाम भी है और अचिन्हित भी। इसने पुलिस जैसे प्रशासनिक औज़ारों की भी यह कहकर आलोचना की कि इन्होंने संकट को और गहरा ही किया। इसका अस्तित्व यहाँ महज़ एक समस्या के रूप में हैः इस धरातल पर जो लोग होते हैं वे इस पूरे कलाम में ऐसे उभरते हैं गोया... उन्हें राज्य और सिविल सोसायटी की शिक्षापूर्ण बातों को सुनना भर होता है और जिनके मस्तिष्क में वैज्ञानिक सोच डालना आवश्यक होता है। इस धरातल पर रहने वालों की एजेन्सी सिविल सोसायटी के अलमबरदारों के लिए कोई मायने नहीं रखती। क्योंकि उन्हें इन परिस्थितियों में तर्कपूर्ण प्रतिक्रिया देना अभी सीखना बाक़ी है। ऊपर की इस चर्चा से हम यह कह सकते हैं कि यह ज़मीन सामुदायिक अस्तित्व का भी स्पेस है। यह वह ज़मीन है जहाँ छोटे और आमने-सामने रहनेवाले समुदायों की कल्पना शक्ति अभी भी मज़बूत है तथा जिसका पुनरुत्पादन इन सबॉल्टर्न बस्तियों की जीवन की शर्तों पर रोज़ाना होता है। चूँकि उन्हें पूर्व आधुनिक और तर्कविहीन क्षेत्र के रूप में देखा जाता है, उनका अस्तित्व सिविल सोसायटी और राज्य की संस्थाओं के लिए एक ख़तरा माना जाता हैः इस तीसरे हिस्से को कभी ख़त्म नहीं किया जा सकता तो कम से कम इसे नियंत्रित और स्वयं में समाहित अवश्य किया जाना चाहिए।

हमने जिन धरातलों की यहां शिनाख़्त की है, वे शहरी नाटक के रंगमंच के समान हैं। कृषि जीवन की काल-गति और लय से वाबस्ता ग़ैर-शहरी या देहाती इलाक़ों की जगह अब बेहद पेचीदा नए हालात वजूद में आए हैं। अब हमारे शहरों में 'आधुनिक' और 'ग़ैर-आधुनिक', 'प्रबुद्ध' और 'विवेकहीन' आपस में नथे-गुँथे हैं। शहरों को फूको के शब्दों में 'दौर-ए-हमवक़्ती' (इपॉक ऑफ़ सायमल्टेनिटी) कहा जा सकता है, जहाँ अलग-अलग कालखंड एक साथ विद्यमान होते हैं। शहर, ख़ास तौर पर उत्तर-औपनिवेशिक शहर, अपनी ज़द में विभिन्न गतियों व लयों को समेटे रखता है और इससे विरोध व प्रतिस्पर्द्धा का निहायत गतिशील माहौल पैदा होता है। सच है कि ये संकल्पनाएँ एक हद तक समस्यापूर्ण हैं क्योंकि 'नागर समाज' की धारणा को पूरी तरह कटी हुई ज़िन्दगी जीने वाले मध्य या उच्च मध्यवर्ग का पर्याय नहीं माना जा सकता है। आख़िरकार, क्योंकि यहाँ भी तो उत्तर-औपनिवेशिक संदर्भों में सामुदायिक अस्तित्व के विचारों की निरंतरता असंदिग्ध है। अंतर सिर्फ़ इतना है कि यहाँ संवाद संचार तकनीकी माध्यम — टेलीफ़ोन, ईमेल व इंटरनेट हैं — जो एक दूसरे से रोज़ाना मुख़ातिब समुदाय के संवाद से भिन्न है। इस बात की पुष्टि गणेश के दूध पीने की घटना से हो चुकी है। लेकिन ऐसे समुदाय आधुनिक शहर के लिए कोई 'समस्या' खड़ी करते नहीं दिखते। आधुनिक शहर के लिए दिक़्क़तें अगर पैदा होती हैं तो इस सबॉल्टर्न वजूद से, जो शहर के मुख़्तलिफ़ इलाक़ों या मोहल्लों में सामुदायिक ज़िंदगी के नए तसव्वुर गढ़ता है।

दैहिक प्रवेश को अगर पूरी तरह नहीं भी रोका जा सके तो भी शहरी भूगोल में और अपनी संकल्पनाओं के ज़रिए प्रबुद्ध नागरिक अपने को अलहदा कर लेने के उपाय और उसकी जगह तो ढूँढ ही सकते हैं। नागर समाज के निरूपणात्मक/संकल्पनात्मक हलक़ों में प्रवेश को तो विभिन्न तरीक़ों से नियंत्रित तो किया ही जा सकता है। नागर समाज में दाख़िले की कुछ पूर्व शर्त्तें हैं, कुछ पाठ हैं जिन्हें सीखे बग़ैर आप सभ्य नहीं माने जाएँगे और सभ्यता सीखने पर ही सभ्य नागर समाज के दरवाज़े आपके लिए खोले जाएँगे। एक मायने में शहर के इस अमूर्त संकल्पनात्मक विभाजन इसके असली भौतिक क्षेत्रों के विभाजन और उनको घेराबंद करने के प्रयासों के समांतर चलते हैं।